

है। इस मनुष्य-नामक जन्तु की बुद्धि पर पदचर पड़ गया है। यह भी भगवान् की ही माया है। जिसे भी देखो वही अपने को संसार भर की बुद्धिमत्ता का ठेकेदार समझता है। हम अंधविश्वासी नहीं हैं, जो मूर्खों की तरह “वाचा वाच्यं प्रमाण” मान लें। हममें बुद्धि है। हम अपनी बुद्धि से वड़े-वड़े आविष्कार कर सकते हैं। क्या आविष्कार कर सकते हो जी तुम ? पी है, चीनी है, मैदा, सूजी, वेसन, लोया ये वस्तुएँ हैं। अब आप कहते हैं, हमने एक नई मिठाई का आविष्कार किया— ‘साहन हलुवा, मोहनथाल, चमचम, लवंगलता, कृष्णमोदक आदि नई मिठाइयाँ बनाईं।’ क्या उसमें नवीनता की, इन चीजों को मिलाकर कोई गोल बना दी, कोई लम्बी, कोई छोटी, कोई मोटी। तुम्हारा आविष्कार तो तब जानते, जब इन वस्तुओं के बिना मिठाई बना देते। घृणी, जल, तेज, वायु और आकाश पचभूत हैं, ईश्वर निर्मित हैं। इनके बिना तुम कोई आविष्कार करो, तो तुम्हारी वड़ाई है ! भिन्न वस्तुओं की योजना करके एक वस्तु बनाना यह भी बुद्धिमानी है, किन्तु येया, मेरी यह लौकिकी बुद्धि है। परमार्थ में इसका कुछ भी उपयोग नहीं। इनसे विषय-भोगों की वृद्धि होती है। ये सब सुक्ति के लिये हैं, सुक्ति के लिये नहीं। ये मस्तिष्क की वस्तुएँ हैं, हृदय की नहीं। हृदय की वस्तु है भगवन्तलीला। विषयों से श्रेष्ठ इन्द्रियाँ हैं।-शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श ये पाँचो विषय घने रहे, फिर भी जब तक इनको भोगने वाली इन्द्रियाँ न हों, -तब तक -ये व्यर्थ हैं। इन्द्रियों से भी श्रेष्ठ मन है। इन्द्रियों स्वयं भोगने में समर्थ नहीं, जब तक कि उनके साथ मन का सहयोग न हो। अतः इन्द्रियों से श्रेष्ठ मन हुआ। मन से भी श्रेष्ठ बुद्धि है। बुद्धि के बिना मन कुछ कर नहीं सकता ! मन कितना भी छटपटाता रहे,

बुद्धि जब तक न कहेगी, तब तक वह कुछ भी न कर सकेगा, छटपटाता ही रहेगा। भगवान् तो बुद्धि से भी परे है। भगवान् में और उनकी लीलाओं में कोई अन्तर नहीं। नाम, रूप, लीला और धाम—ये सब भगवान् के ही स्वरूप हैं, एक ही हैं। अतः भगवान् साधारण बुद्धि से नहीं समझे जाते। उन्हें समझने के लिये एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म और ही विलक्षण बुद्धि होती है। अचिन्त्य भावों को मानवीय कसौटी पर कसना ऐसे ही है, जमे सुवर्णों को ककण पर कसना। भगवत् लीलाओं को तर्कों से नहीं, अद्वा-भक्ति और विश्वास के साथ श्रवण करना चाहिये; सभी रस आवेगा। माता के स्तनों को बालक बनकर पीने से ही दूध मिलेगा। दाढ़ी-मूँछ लगाकर, बहल्यन का अभिमान बढाकर, उन्हें पियो, तो कुछ न मिलेगा। यदि कुछ मिल जाय, तो के ही जायगी। अतः कृष्णचरितों को सरल हृदय से, विश्वास-भरित अन्तःकरण से, अद्वा-सहित श्रवण करना ही परम धर्म है।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! यशोदाजी के गर्भ से योगमाया ने छोरी बनकर जन्म लिया। साथ ही द्विमुज श्रोत्रिण भी उनके उदर से उत्पन्न हुए।”

चौककर सोनकजी ने कहा—“मजी सूतजी ! माप यह क्या कह रहे हैं ! हमने तो अब तक यही सुना है, कि यशोदाजी के गर्भ से एक लड़की हुई, देवकीजी के गर्भ से भगवान् विष्णु श्रीकृष्णरूप में प्रकट हुए। वसुदेवजी श्रीकृष्ण को चुपके से यशोदाजी के पलंग पर रख आये, वहाँ से लड़की को उठा लाये। अब माप कहते हैं, यशोदाजी के गर्भ से भी श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। क्या श्रीकृष्ण दो थे ?”

हँसकर सूतजी बोले—“वो नहीं महाराज ! श्रीकृष्ण तो न

ये। तीन कहना भी अनुचित है, वे तो अनंत थे। किन्तु, लीला की सगति लगाने के लिए हमारे प्राचीन आचार्यों ने तीन ही श्रीकृष्ण की वक्षपना की है। श्रीकृष्ण बड़े भोले-भाले हैं। वे इतने भोले-भाले न होते, तो ये स्वार्थी लोग उन्हें कभी न पूजते। वे इतने भोले हैं कि उन्हें तीन वनाओं, तीन वन जाते हैं, एक वनाओ एक वन जाते हैं। देवकी का पुत्र बनाओ, देवकी-नन्दन वन जाते हैं। अर्जुन ने कहा—“मैं तो तुम्हें सात्वा वनाऊंगा।” भगवान् ने कहा—“मेरी बहन को लेकर भाग जा, मेरा जोजा हो जायगा।” अपना रथ भी दे दिया, अपना सारथी भी दे दिया। बताइये, इतनी कृपालुता, इतनी दयालुता आप भ्रम्यम कहाँ पायेंगे। पूतना ने कहा—“मैं तो उन्हें बेटा बनाऊँगी।” भगवान् बोले—“ला, माँ, तेरी कपालक्रिया भी लगे हाथ कर दूँ। स्तन पीते-पीते ही उसे मातृगति दे दी। ऐसे भोले-भाले कृष्ण को चाहे जो बना लो, वे तुम्हें मना नहीं करते। और तीन कृष्ण बनाये बिना तो लीला की सगति भी नहीं बैठती।”

यह सुनकर शौनकजी हँस पड़े और बोले—“हाँ, तो सूतजी! तीन कृष्ण कौन-कौन-से हैं?”

“सूतजी बोले—‘सुनिये महाराज! एक तो मधुरेश कृष्ण हैं, एक द्वारकेय कृष्ण और व्रजेश कृष्ण। तीनों के ही अवतार के पृथक्-पृथक् प्रयोजन हैं। तीनों ने पृथक्-पृथक् भवतार लेकर भी एक ही धरीर का आश्रय लिया। श्रीरामावतार में वालि को भगवान् ने मार दिया था। इस पर इन्द्र दुःखित हुए। भगवान् ने उन्हें बर दिया—यब के हम तुम्हारे सुत से सूर्य सुत को मरवा दगे। वे ही वालि और सुग्रीव, बर्ष और अर्जुन हुए। यह अर्जुन मर-नारायण—दोनों ऋषियों ने से नर का

अवतार है। नारायण ने भी इन्द्र को वर दिया था—‘मैं अवतार लेकर तुम्हारे पुत्र की रक्षा करूँगा और उसका सारथी बनूँगा। अतः महाभारत कराने के लिये, ज्ञान का उपदेश करने के लिये, नारायण ऋषि अवतार लेना चाहते थे। उसी समय भूमि पर बड़े बड़े बलवान् दैत्य उत्पन्न हो गये थे। भूमि ने देवताओं के साथ भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने वर दिया, ‘हम मथुरा में देवकी के यहाँ उत्पन्न होकर असुरों का संहार करेंगे, भू-का भार उतारेंगे।’ देवताओं ने भूमा पुरुष से भी प्रार्थना की थी। उन्होंने अपने कृष्ण और इवेव दो बाल उखाड़कर कह दिया—‘दैत्यो के घघ के लिये तो मेरे इन दो बालों का ही अवतार यथेष्ट है। अतः वे ही दो बाल बलराम-श्रीकृष्ण रूप में उत्पन्न हुए। और परास्पर प्रभु स्वयं भगवान् खलि कोटि ब्रह्माण्ड-नायक गोलोक की लीला की मर्त्यलोक में प्रकट करने के लिये उत्पन्न हुए। इस ब्रह्माण्ड के पालक विष्णु ने मथुरा में भगवती देवकी देवी के यहाँ चतुर्षु अरूप में अवतार धारण किया। ये मथुरेश विष्णु हैं। इनका काम है असुरों का संहार करना, भू का भार उतारना। उसी समय नारायण ऋषि के भी अवतार का समय था। उन्होंने सोचा—‘अब हम पृथक् माता कहीं खोजते फिरें। लाओ, विष्णु भगवान् ने अवतार धारण किया है, इनके ही शरीर में प्रवेश कर जायें। अतः वे भी उसी शरीर में प्रवेश कर गये। इनका काम है—असुरों का सारथ्य करना और गीता आदि का उपदेश करना। इनका कार्य मथुरा से जाकर द्वारका में आरम्भ होता है। अतः वे द्वार-का कृष्ण हैं। तीसरे परास्पर प्रभु द्विभुज ही होकर मोट्टा में यशोदा देवी के उदर से उत्पन्न हुए। वे अजेश नन्द-नन्दन कृष्ण हैं। पहले ये हुए, इनके साथ भगवान् की योगमाया पुत्री

रूप से हुई अर्थात् यशोदा के दो सन्तानें हुई—“एक पुत्र और एक पुत्री । १ यदि एक ही उदर से पैदा न होती, तो अनुजा कैसे कहलाती ? २ अनुजा तो उसी का नाम है, जो एक माता के गर्भ से अपने गे पीछे पैदा हुई हो । इससे विदित होता है कि जिस उदर से योगमाया हुई थी, उसीसे पहले भगवान् भी उत्पन्न हुए । जब वसुदेवजी अपने पुत्र को लेकर गोकुल पहुँचे, सब उन्होंने यशोदाजी की शय्या पर एक पुत्र और एक पुत्री को पड़े देखा । उन्होंने उन्होंने अपने पुत्र को रखा, रथोही वह यशोदा के द्विभुज भुज में उसी प्रकार समा गया, जिस प्रकार विजली बादल में समा जाती है । ३ सजातीय छोटी वस्तु बड़ी वस्तु में मिल जाती है, एक हो जाती है । हम कैसा भी एक घड़ा जल साकर गङ्गाजी में डालें, उसमें वह एक हो जायगा । इसी प्रकार नन्द-नन्दन श्रीकृष्णचन्द्र में वसुदेव-नन्दन वासुदेव विलीन हो गये ।”

दीनकजी बोले—सूतजी ! इसमें विशेषता क्या हुई ? भगवान् तो सर्वज्ञ हैं, सब काम कर सकते हैं । वे गीता का उपदेश भी दे सकते हैं, अर्जुन का सारथ्य भी कर सकते हैं और भू का भार भी उतार सकते हैं । फिर तीन कृष्णों की कल्पना

१. गोविन्दाष्टक पुमान् कन्या शम्बिका मधुराक्ष ॥ (मनिपुराष्टक)

२. नन्द पर्याय यशोदाया निधुन समजायत ॥

भद्रस्पतानुजा विष्णोः साधुषाष्टमहाभुजा ॥

(धौ भा० १० स्क० ४ सू० ६ स्तोत्र)

३. माधुरेसो द्वारकेसो ब्रजस्ये नन्दनन्दने ।

उमाशवि विलोयते कृष्णे प्रणुने नृप ॥

वासुदेव समानीते वासुदेवेऽखितारविनि ॥

कीने नन्दगुते राजन् पने घोषामिनी यया ॥

करने से प्रयोजन क्या सिद्ध हुआ ? शरीर तो एक ही है, भगवान् की प्रणत शक्ति है, वे 'कतु मक्तु मयथाकतु' सभी समर्थ हैं ।^१

इस पर गम्भीर होकर सूतजी बोले—'नही, महाराज ! इसे ध्याप ध्यानपूर्वक विचार करें । वेसे तो ध्यापका कथन ठीक ही है, भगवान् सर्वसमर्थ हैं; किन्तु भक्तों ने रसास्वादन के लिये, लीलाओं की सगति लपाने के लिये, ऐसी कल्पनायें की हैं । वास्तव में तो विष्णु भी वे ही हैं, नरनारायण ऋषि भी वे ही हैं, भगवान् भी वे ही हैं, ब्रह्मा भी वे ही हैं, परात्पर प्रभु भी वे ही हैं । किन्तु बिना भेद-भाव के लीला तो नहीं बनती । विष्णु और परात्पर प्रभु के अवतारों में कुछ अन्तर है । विष्णु तो देवकी के गर्भ^२ से पुत्र की भाँति उत्पन्न नहीं हुए, सहस्रा प्रकट हो गये; जैसे सूर्य प्रकट हो जाता है ।^३ तो भी वे चतुर्भुज-रूप में प्रकट हुए, पुनः बनकर नहीं प्रकट हुए, परमेश्वर बनकर खड़े हो गये । रोये नहीं, हँसते रहे । किन्तु, नन्द के घर में वे ध्यात्मज बनकर—पुनः बनकर—द्विभुज बालक होकर, यशोदाजी के गर्भ^४ से बच्चे की भाँति, उत्पन्न हुए ।^५ इन द्विभुज यशोदानन्दन ने न किसी देव को मारा, न भू का भार उतारा । ये सब काम तो इनके अधीन नौकर-चाकर करते रहे । इन्हें किसी का रथ हाँकने या गीता का उपदेश देने का अवकाश कहाँ था ? इनके तो दो ही काम हैं—राग और भोग । आज तक भी व्रज के

१ देवक्या देवहवीभ्यां विष्णुः सवगुहादाय ।

आधिरासीद् गया प्राच्या विमोन्मुखि पुनस्तः ॥

(श्री भा० १० स्क० ३ अ० ८ श्लोक)

२ नन्दस्त्वामज उरगन्ते जाताह्लादो महामनाः ।

(श्री भा० १० स्क० ५ अ० १ श्लोक)

मयादावाले मन्दिरो में भगवान् के राग-भोग के ही समय दर्शन होते हैं। उन्हें किसी को दर्शन देने का अवसर कहाँ राग-भोग के समय जो भाग्यशाली आँखें, वे दर्शन कर लें। वे कृष्ण कर्मा ब्रज को छोड़कर बाहर पर भी नहीं रखते। ब्रज में ही उत्पन्न हुए, सदा ब्रज में ही रमण करते रहते हैं।^१ अतः देवकी-नन्दन चतुर्भुज मथुरेश, और श्री भगवान् नारायण अष्टपि तपस्वी के अवतार द्वारकेश—ये दोनों ही—द्विभुज यशोदा के गर्भ से साक्षात् पुत्र रूप में प्रकट होने वाले नन्द-नन्दन के रूप में विलीन हो गये।”

यह सुनकर शौनकजी बोले—“अजी, सूतजी! यह तो भक्तों की भावना है। लीलाओं की संगति लगाने की कल्पना है। अच्छी बात है! परन्तु, यह बताइये, ब्रज से तो भगवान् धर्मुर के साथ चले गये थे। यदि न जाते, तो गोपियों को इतना वियोग क्यों होता? फिरही गोपियों के अश्रुओं की बाढ़ से ब्रज के वह जाने की संभावना क्यों होती?”

सूतजी बोले—“महाराज! ब्रज-रस के रसिक इन सब बातों की संगति लगाते हैं। उनका कथन है, कि भगवान् का गोप-गोपी तथा गायों से कभी वियोग होता ही नहीं। उनका तो निरन्तर संयोग है। भगवान् ने प्रेम-बुद्धि के लिये यह सीला अवश्य की थी। वे रथ पर चढ़कर धर्मुर के साथ मथुरा की

१. सर्वदा द्विभुजो कृष्णो न चतुर्भुजः कदाचन ।

सुन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति ॥

२. स स्वयं द्विभुजः कृष्ण यशोदागर्भसम्भवः ।

तस्यासौ देवरी पुत्र भविष्यति चतुर्भुजः ॥

ओर चले अवश्य थे, किन्तु भतरौड तक ही गये। यहाँ ब्रह्मरजो ने मध्याह्न सन्ध्या करने के लिये उभो ही यमुनाजी में डुबकी लगाई, तबोही श्रीकृष्णजी भी यमुना में डुबकी मारकर तुरन्त ब्रज में आ गये। रथ पर वहाँ केवल चतुर्भुज मथुरेश विष्णु ही बैठे रह गये, जिन्हें वसुदेवजी छोड़ गये। जैसे प्रयाग से गंगा-यमुना दोनों मिलकर समुद्र की ओर साथ-साथ चलती है, किन्तु समुद्र में मिलने के पूर्व ही बंगाल में (मुक्त प्रिवेणो-क्षेत्र से) यमुना पुनः पृथक् होकर चली जाती है वहाँ यमुना की धारा फिर पृथक् हो गई है, वैसे ही वसुदेवजी वाले मथुरेश दृष्ट्यु कुछ दिन तो ब्रज में ब्रजेश कृष्ण के श्रीविग्रह में मिलजुल कर रहे। वहाँ पर अघासुर, बकासुर, धेनुकासुर, आदि असुरों को जो मारा है, वह तो इन मथुरेश का ही काम था। अब जब इनका मथुरा की लोला करने का समय आ गया, तब यशोदा-नन्दन सीताद्व के नाते इन्हें वृन्दावन की सीमा (भतरौड, अक्रूर घाट) तक पहुँचाने आये। इस बाद को सभी जानते हैं। ब्रज में भगवान् प्रकट-रूप में कभी भी चतुर्भुज नहीं हुए हैं। यदि चतुर्भुज हो जाते, तो रस-भग ही हो जाता। फिर सख्य, वात्सल्य, मधुर—इनमें से एक भी रस न बनता। सुनते हैं, एक दिन भगवान् मान करके छिप गये। गोपियाँ व्याकुल होकर उन्हें ढूँढने लगी। भगवान् तो कीतुकी हो टहरे! यहाँ कोई ब्रज के सखा या गोप तो थे नहीं! रहस्य की लोला धी! गोपियों को छकाने के लिये भगवान् चतुर्भुज बनकर एक कुंज में बैठ गये। रूप-रंग, आकृति प्रकृति—सब वही। केवल भुजार्ध चार धारण कर ली। गोपियों ने जब चतुर्भुज भगवान् को देखा, तब तुरन्त उन्होंने अपना अचल सम्हाला। गले में धोड़नी डालकर घुटने टेककर उन्होंने भगवान् को प्रणाम

किया। भगवान् ने कहा—“गोपियो ! मैं तुमसे प्रसन्न हूँ, पर माँगो।”

गोपियों ने कहा—“हमारे नटखट चित्त-चोद श्रीकृष्ण हैं, वे लो गये हैं। आप ऐसा वर दें, कि वे मिल जायें।”

भगवान् बोले—“अरे पगलियो ! मैं ही तो श्रीकृष्ण हूँ !”
गोपियो ने यह सुनकर कान बन्द कर लिये, बाँटें बीच ली और बोली—“श्रीविष्णु ! श्रीविष्णु ! आप यह कौसी भ्रम की बात कह रहे हैं ! आप तो चतुर्भुजों की देवता हैं ! हमारे यशोदा-नन्दन श्रीकृष्ण तो गोप-कुमार हैं !”

गोपियों को ऐसी निष्ठा देखकर भगवान् द्विभुजरूप से प्रकट हो गये। अक्रूरघाट पर अक्रूरजी ने जल में चतुर्भुजों विष्णु के ही दर्शन किये थे। नन्द-नन्दन तो लौटकर भ्रज में आ गये और गोपियों के साथ अद्यावधि वहाँ विहार कर रहे हैं। उनका विहार नित्य है, श्रीकृष्ण-नित्य है, गोप-गोपीमण तब उन्के समस्त परिकर नित्य है। अन्तर इतना है, कि पहले उनको प्रदट सीला थी, अक्रूर के साथ घाने के अनन्तर अप्रकट लीला-ही गई।”

इस पर पौनकजी बोले—“सूतजी ! ये तो सिद्धांत की गूढ़ बातें हैं। अब आप हमें कथा-प्रसंग सुनाइये।”

सूतजी ने पौनकजी से कहा—“अब महाराज ! आपने बात छेड़ दी, तो मुझे उसका उत्तर देना ही था। नहीं तो यह तो अत्यन्त रहस्य की बातें हैं साधारण बुद्धि से ये नहीं समझी जा सकती। क्या प्रसङ्ग की ही भ्रम में चालू करता हूँ। कथाओं की ओर सबकी स्वाभाविक रुचि होती है और कथा-प्रसंग की सब समझ भी जाते हैं।”

पौनकजी ने कहा—“हूँ सूतजी ! क्या ही कहें। अर्थात्, तो यमुना पार करने बमुद्देयजी बह गये ?”

सूतजी बोले—सहाराज ! सुनिये । यमुना पार करके क्षीप्रता के साथ वसुदेव जी नन्द जी के गोष्ठ में पहुँचे । लाखों गायों के झुण्ड वहाँ बँधे हुए थे । वसुदेवजी का हृदय घटक रहा था । वे सोधे नन्दजी के चोपाल पर पहुँचे । देखा वहाँ सब गोप गहरी निद्रा में सोधे पड़े हैं । इसे भगवान् को माया समझकर वे भीतर घर में घुसे । देखा, सब किवाड खुले पड़े हैं । घर में स्त्रियाँ तो बहुत हैं, किन्तु सब सोई पड़ी हैं । कोई पंढा पर हो मुँह फाड़े सो रही है, किसी के मुख से लार बह रही है, कोई ढोलक पर हो सिर रखे सो गई है, कोई किसी के ऊपर हो पड़ गई है, कोई भित्ति के ही सहारे पड़ी है, कोई मजोरा छाती पर हो रखे लुढ़क रही है, कोई घड़े के ही सहारे पड़ी है, कोई किसी के पेट पर हो सिर धरे सो रही है । वसुदेवजी समझ गये, यह सब भगवान् की माया है । वे सूतिकाघर में गये, तो देखा कि स्वयं यशोदा मैया भी गहरी निद्रा में पड़ी हुई हैं । एक सखजात बालिका वहाँ पड़ी हुई है । वसुदेवजी ने देर नहीं की । सूत से श्रीकृष्ण को उठाकर यशोदा मैया की शय्या पर सावधानी से सुला दिया और वहाँ से उस बालिका को उठा लिया । वे चलने लगे, किन्तु उनके पैर आगे नहीं बढ़ते थे, नेत्रों से भर-भर खूँ बह रहा था । दो पैर गये फिर लौट आये फिर श्रीकृष्ण को उठाया, मुख चूमा, फिर रख दिया । फिर बड़े, फिर मन न माना, फिर लौटे । उनका चित्त नहीं चार्टा था कि श्रीकृष्ण के समीप से जाऊँ, उनका वियोग उन्हें असह्य था । वे आगे बढ़े कि एक बूढ़ा घाय के पेट पर से निकला । वह चौक पड़ी । वसुदेवजी ने सोचा—“बात सिगड़ी । यदि एक भी कोई जाग गई, तो चोर-चोर करके चिल्ला उठेगी ।” अतः वे क्षीप्रता से पैर दबाते हुए चले । किन्तु, योगमाया के प्रभाव से कोई

काण्ड नहीं हुआ। वे चुपके से घर के बाहर हो गये। चौपाल पर गोप पूर्ववत् सो रहे थे। मन ही मन धौकृष्ण का चिन्तन करते हुए वसुदेवजी यमुना-तट पर आये। यमुनाजी ने उन्हें पूर्ववत् मार्ग दे दिया।



यमुना पार करके वे अपने कारावास में आये। द्वारपाल अभी तक निद्रा में अचेत पड़े थे। वसुदेवजी ने लड़की को देख देवकी देवी को दे दिया। उन्होंने स्नेह पूर्वक उसे अपनी सेज पर

सूता लिया। तदन्तर वसुदेवजी ने पुनः पूर्ववत् अपने पैरों में बेड़ी डाल ली—'हाथों में हथकड़ी पहन ली, और पूरे बन्दी बन गये।'

सौमज्जी ने पूछा—'सूतजी! यह तो कुछ चमत्कार-सा ही दीखता है। पहले वाले सब सो गये, गोप-गोपी सब सो गये, यमुना घट गई! इसमें तथ्य क्या है?'

सूतजी बोले—'महाराज! यदि श्रीकृष्ण भगवान् हैं, तब तो इसमें कुछ भी आश्चर्य या शंका नहीं! योगमाया के प्रभाव से सब कुछ सम्भव है! यदि उन्हें मनुष्य मानकर इस लीला पर विचार करें, तब तो स्पष्ट ही है कि कंस के अत्याचारों से सभी दुःखी थे, पहले वालों में मिलकर वसुदेवजी चले गये। नवजी से पहले ही पक्की कर ली होगी। कृपावश उन्होंने अपनी पुत्री देना स्वीकार कर लिया होगा। वे अपने गोप-गोपियों और गार्मों सहित इस पर डेरा डालकर ठहरे होंगे। इस प्रकार सब ने मिल-जुलकर यह पङ्कज रचा होगा, कंस की ब्राह्मणों में धूल भोंकी होगी। महाराज! भगवान् की लीलायें अनन्त हैं। उन्हें जो मनुष्य मानता है, उसके लिये वे मनुष्य बन जाते हैं, जो उन्हें योगी मानता है, उसके लिये वे योगेश्वर और जो उन्हें ईश्वर मानता है, उसके लिये वे ईश्वर बन जाते हैं। पुराणों तथा अन्य स्थानों में इस घटना का भिन्न-भिन्न प्रकार से वर्णन किया गया है।

कहो वहाँ है कि नन्दजी की एक चेटिका (दासी) थी। उसके द्वारा वच्चे-बच्चों का ध्यान-प्रदान हुआ। कहीं कहा है, 'नंद जी से और वसुदेवजी से पहले ही बात पक्की हो चुकी थी, कि मेरे जो संतान होंगे, उसे तुम्हें दूँगा। तुम्हारी आँखों से संतान की मैं रक्षा करूँगा।' वही वहाँ है कि वसुदेवजी गोकुल

नहीं गये। नन्दजी कस को कर देने मथुरा जा रहे थे। यमुना किनारे वे अपना पड़ाव डालकर पड़े थे। वही यशोदा देवी ने बालिका को जन्म दिया। वही से वसुदेवजी उठा ले गये। कहीं ऐसा भी वर्णन है, कि वसुदेवजी बच्चे को छिपाने के लिये अलक्षित स्थान की ओर दौड़े। उन्हें कुछ भी पता नहीं था, कि मुझे कहाँ जाना है। वे यमुना पार करके जा रहे थे, कि उन्हें मृतक लड़की को लिए हुए नन्दजी दिखाई दिये। उनके लड़की हुई होगी, होते ही मर गई होगी। तब वसुदेवजी ने उनसे प्रार्थना की कि मेरे इस बच्चे को आप किसी तरह छिपा लें।”

नन्दजी ने कहा—‘भाई! कस राजा बड़ा क्रूर है। मैं उसके विरुद्ध आचरण नहीं कर सकता।’ तब वसुदेवजी ने बहुत श्रम-विनय की, अपने बिये उपकारी का स्मरण दिलाया। जैसे-तैसे नन्दजी सहमत हुए। वे यमुना-किनारे एक गड्ढे में लड़की को रखकर वसुदेवजी के पुत्र को लेकर अपने गोदुल चले गये।

वसुदेवजी लौट ही रहे थे कि उन्हें रुदन की श्रद्धा-ध्वनि सुनाई पड़ी। वसुदेव उधर ही चले। उन्होंने क्या देखा कि लड़की तो जीवित है। वे उस लड़की को लेकर कारावास में आये और फिर उसको कस ने मार डाला। इस प्रकार इसमें अनेक मतभेद हैं।”

श्रीमद्भगवत् ने कहा—“सूतजी! हम तो धीवृष्ण को मनुष्य मानते नहीं। मनुष्य मानकर हम उनके चरित्र से क्या लेंगे? हम तो उन्हें परात्पर प्रभु मानकर ही उनकी कृपामय रसमयी, पाह्लादमयी, परम मनोहर लीलाओं का अद्भुत-सहित श्रवण करना चाहते हैं। मतभेद तो सदा रहे हैं, सदा बने रहेंगे। बने

हमें इनसे क्या प्रयोजन ? हमें तो आप उन परास्पर प्रभु नटवर गिरधारी वनवारी की ललित लीलाओं को उमङ्ग, उत्साह और आह्लाद के साथ सुनाइये । हाँ, तो फिर योगमाया के कारावास आने के अनन्तर क्या हुआ ?

सुतजी बोले—“उसके पश्चात् जो हुआ, उसे मैं आपको सुनाता हूँ । योगमाया रो पड़ी सब पहरे वाले जग पड़े । योगमाया का बोलना ही असुरों को चुनौती देना है । अब जो हुआ, उसे भी आचमन करके कहूँगा । तनिक देर कीर्तन हो जाय ।”

श्री कृष्णगोविन्द हरे मुरारे ।

हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

दृश्य

सुत वियोग अरु कंस-वास तैं गौं घबराई ।
पति तैं कन्या लई सेज में साथ सुवाई ॥
महिनी श्री वसुदेव हथकरी बेरी फिरि तैं ।
दम्पति धर धर कैपै कंस पापी के घर तैं ॥
रुदन योगमाया करबो, द्वारपाल सभ जगि गये ।
आल-जग्न सुनि कह्य यूँ, तुरत कंस दिँय भगि गये ॥



कारावास में कंस

[८३४]

स तत्पाचूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ।

धृतीगृहमगात् तूर्णं प्रसृजन् मुक्तभूर्धृजः ॥ॐ

(श्री भा. १० स्क० ४ पं० ३ श्लो०)

छप्पय

कहें कंस ते देव ! देवकी बालक जायो ।

उमसेग-सुत सुनत जन्म रिपु अति घबरायो ॥

हठवड़ाइके उठयो, मूँड़ चौंसटमहँ लाग्यो ।

सुधि न मुकुट की रही, केरा खोले ही भाग्यो ॥

आयो कारावास महँ, सराटे तेँ छुसि गयो ।

कन्या देखी पलंग पे, निरखि तेज विस्मित भयो ॥

यह मनुष्य प्राणो भवती मुत्यु से सदा डरता रहता है । यह सदा चोकरना रहता है, कि मैं मर न जाऊँ । पुराण में 'मुत्यु' को भयम् के बश में कहा है । कही तो, ऐसा वणन है कि भयम् की खो का नाम मया (असत्यता) था । इन दोनों से दम्भ और माया दो पुत्र-पुत्री हुए । भयम् की सतति होने से इन दोनों ने परस्पर विवाह कर लिया । इनके संसर्ग से भी लोभ और निवृत्ति

ॐ श्री गुरुदेवकी कहते हैं—'राजन् ! देवकी के बच्चा हुआ है, इतना सुनते ही वस तुलत पलङ्ग छोड़कर पड़ा हो गया और बिना मुकुट पहने नगे सिर खुले वालों से हड़बड़ाहट में दममगाहट हुआ देवकी के प्रसव-पर में आया । 'यह मेरा बाल', 'मेरा बाल' हे, कहता हुआ यह भयम् विह्वल हो रहा था ।"

(शठता) — ये दो पुत्र-पुत्री हुए। उन्होंने भी अपनी वधापरम्परा-नुसार विवाह कर लिया। इनसे भी क्रोध और हिंसा — ये दो पुत्र-पुत्री हुए। इन्होंने भी धापस में विवाह कर लिया। इनमें कलि (कलह) और दुरुक्ति — ये दो बालक और बालिका हुई। ये भी फिर बहू दुलहा बन गये। इनसे भय और मृत्यु — ये दो पुत्र-पुत्री हुई। इस क्रम से मृत्युदेव अथम महाराज के प्रतीक के पीछे अर्थात् पाँचवी पीढ़ी में उत्पन्न हुए।

किसी युग में दूसरा ही क्रम है। किसी में ऐसा है कि अमर्त्य की भी हिंसा थी। इन दोनों से अनृत (असत्य) पुत्र, निर्भृति पुत्री — ये दो सन्तानें हुई। इन दोनों ने परस्पर में विवाह कर लिये, जिससे दो पुत्र और पुत्रियाँ अर्थात् चार सन्तानें हुई। पुत्रों के नाम नरक और भय थे तथा कन्याओं के नाम माया और वेदना। भय ने माया से विवाह कर लिया और नरक ने वेदना का पाणिग्रहण कर लिया। भय और माया के संसर्ग से ही “मृत्युदेव” का जन्म हुआ। फिर मृत्यु के व्याधि जरा, शोक, तृष्णा, क्रोध आदि बहुत-सी सन्तानें हुई। इस क्रम से मृत्युदेव अथम बाबू के प्रपौत्र अर्थात् तीसरी पीढ़ी में हुए। ‘मृत्यु’ किसी कल्प में पुरुष रूप से हुए हैं किसी कल्प में इन्हे मृत्युदेवी भी कहा है।

मृत्युदेव के सम्बन्ध में एक कथा है। यमराज जब लोक-पाल हुए, तब देखा कि सृष्टि बहुत बड़ गई है। ब्रह्माजी ने यमराज से कहा — “देखो, भाई! आग के साथ व्यय भी होना चाहिये, कुछ लोगो को मारते भी चलो।”

यमराज ने कहा — “नहीं महाराज! ऐसा क्रूर काम मैं नहीं करूँगा।”

ब्रह्माजी ने चिन्तित होकर अपने चार हाथों से चारों मुख

की सफेद दाढ़ी के बालों को सुलझाते हुए कहा—“अच्छा, तो हम तुम्हें एक मन्त्री दिये देते हैं। तुम उसे मारने का काम सौंप देना, इसका एक विभाग ही पृथक् कर देना।”

यमराज ने इसे स्वीकार किया। ब्रह्माजी एक उपलोक पाल की खोज में चले। चलते-चलते गंगा-किनारे उन्हें एक ब्राह्मण घोर तप करते हुए मिला। ब्रह्माजी ने उसे हिलाते हुए कहा—“उठी भाई, उठी। मैं तुम्हें वरदान देने आया हूँ। मैंने तुम्हें उल्लोक-पास बना दिया।”

ब्राह्मण बड़े प्रसन्न हुए, पूछा—“महाराज! मुझे किस लोहपाल का सहायक बनाया है?”

ब्रह्माजी ने कहा—“तुम आज से यमराज के सहकारी हुए। उनके साथ ही मिल-जुलकर काम करो।”

उसका नाम मृत्यु था। वह बोला—“महाराज! मुझे करना क्या होगा?”

ब्रह्माजी ने कहा—“लोगों को मारना होगा।”

ब्राह्मण दु खी होकर बोला—“ऐसा मरु कर्म मुझसे नहीं होगा। यह पद आप किसी दूसरे को दे दें, मुझे यह आपकी गद्दी नहीं चाहिये।” यह कहकर वह पुनः घोर तप करने लगा। फिर ब्रह्माजी आये। फिर वही प्रस्ताव किया। ब्राह्मण फिर सहमत नहीं हुए। तब ब्रह्माजी ने कहा—“अच्छा, हम सुनै भी तो, तुम्हें आपत्ति क्या है?”

मृत्युदेव बोले—“अजी महाराज! आपत्ति की तो बात ही है। सब मुझे गालियाँ देंगे, बुरा-मला कहेंगे। मारना कुछ अच्छा काम थोड़े ही है! यह सत्य है कि लोगों पर मेरा प्रभाव रहेगा, लोग मेरे नाम से काँपेंगे, किन्तु रात्रि-दिन मुझे गालियाँ सुननी पड़ेंगी।”

ब्रह्माजी ने कहा—“बस, इतनी-सी ही बात से डरते हो ? इसका मैं प्रयत्न किये देता हूँ ।” तुरन्त ही ब्रह्माजी ने असंख्य रोगों को उत्पन्न किया और उन्हें उत्पन्न करके बोले—“देखो, यह सब तुम्हारे सैनिक होंगे, तुम्हें कोई भी दोष न देगा ! सब यही कहेंगे, चर से चर गया, साँप ने काट लिया, विष से मरा, घोड़े से गिरा, जल में डूबा । सब दोष इन रोगों पर ही जायेंगे । अब क्या था ! विप्रदेव ने वह पद स्वीकार कर लिया । उसी दिन से सब उनके नाम से धर-धर कॉपने लगे । कितना भी बड़े से बड़ा बीर हो, मृत्यु का नाम सुनकर उसका भी हृदय धक-धक करने लगता है । जहाँ मृत्यु का देवी के रूप में वर्णन किया है, वहाँ उसकी उत्पत्ति को बड़ी मनो रञ्जक कहा है ।

जैसे कभी-कभी मनुष्य से भारी भूल हो जाती है, वैसे ही ब्रह्मा जी भी कभी-कभी भारी भूल कर बैठते हैं । कोई बड़ा सुन्दर भव्य भवन बनावे, किन्तु कहीं भी उसमें से जल निकलने की गोरी न बनावे, तो वह घर दुर्गन्धि करने लगेगा । उसमें रहना कठिन हो जायगा । इसी प्रकार ब्रह्माजी ने सृष्टि बनाने की क्रोश में सृष्टि तो बहुत-सी उत्पन्न कर दी । मानसी सृष्टि के अनन्तर मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की । स्त्री-पुरुषों के संयोग से सम्पूर्ण पृथ्वी भर गई । साँस लेने का भी स्थान न रहा । तब तो ब्रह्माजी बड़े धवराये । श्ररे, यह तो मुझसे भूल हो गई ! सृष्टि बढ़ाने की धुति में मैंने यह विचार नहीं किया कि इतनी सृष्टि रहेगी कहाँ ! बहुत सोच विचार किया, कुछ उपाय भी न सूझा ! अब तो ब्रह्माजी को बड़ा क्रोध आया । क्रोध करके वे सम्पूर्ण सृष्टि को भस्म करने लगे । दशों दिशाएँ उनके क्रोध के धुँएँ से भर गईं । सम्पूर्ण विश्व का प्रलय होते देखकर त्रिनेत्र सदाशिव भोलेनाथ दौड़े-दौड़े आये और हाथ जोड़कर

बोले—“पिताजी ! पिताजी ! यह आप क्या कर रहे हैं ? आपने ही तो इस सृष्टि को उत्पन्न किया है, आप ही इसका नाश क्यों कर रहे हैं ? आपके द्वारा ऐसा अनर्थ उचित नहीं !”

शिवजी की विनय से ब्रह्मा बाधा का मोक्ष कुछ शान्त हुआ और बोले—“भैया ! शङ्कर मेरा उद्देश्य सृष्टि का विनाश करने का नहीं है, किन्तु इतनी बड़ी हुई सृष्टि रहे कहीं ? मैं चाहता हूँ कि काम योग्य ही जीव-जन्तु रहे। यह व्यर्थ की वादी छँट जाय !”

शिवजी बोले—“नहीं, महाराज ! आपके द्वारा ऐसा मोक्ष शोभा नहीं देता। आप मुझे यही वर दें कि आप सृष्टि का संहार न करें !”

ब्रह्माजी ने कहा—“अच्छी बात है, मैं सृष्टि का विनाश न करूँगा। किन्तु, तुम ऐसा कोई उपाय सोचो, जिससे आय-व्यय प्रायः बराबर बने रहे। या सृष्टि बढ़ती ही गई, तो काम कैसे चलेगा ?” इतना कहकर ब्रह्माजी विरव-विनाश से विरत हो गये। वृषभध्वज भी त्रिधि के पास बैठ गये। ब्रह्माजी चिन्ता और मोह में भरे विचारने लगे। इतने में ही उनकी समस्त इन्द्रियों की सहायता से एक सुन्दरी की उत्पन्न हो गई। उसके शरीर का वर्ण कृष्ण और लोहित था। अर्धेन्द्र भीतर घुसी-भी कृष्ण वर्ण की थी। उसकी हथेलियों काली थीं। उसके कानों में कमल के पुष्पजल जगमग जगमग करते हुए चमक रहे थे। वह दिव्य वस्त्रालंकारों से विभूषित थी। उपज जाने हो उसने शंकर जी तथा ब्रह्मा जी को प्रणाम किया और उनकी दाईं ओर खड़ी हो गई।”

ब्रह्माजी ने उसे बुलाया और कहा—देख, तेरा नाम मेने मल्लु रखा !”

- उसने हाथ जोड़कर कहा—“महाराज ! मुझे क्या काम करना होगा ?”

ब्रह्माजी ने कहा—“मैंने क्रोध और चिन्ता में भरकर तुम्हें उत्पन्न किया है। अतः तू सध को मारा कर। धनी हो, निर्धन हो, राजा हो, रङ्ग हो, विद्वान हो, मूर्ख हो, स्त्री हो, पुरुष हो, तू बिना भेद-भाज के सध को कालानुसार मार दिया कर।”

यह सुनकर मृत्यु देवी तो घबराई। यह कैसा भूत कर्म ब्रह्माजी मुझे बता रहे हैं। दिनों के थोसू तो नाक पर रखे ही रहते हैं। अतः वह टप-टप थोसू बहाती हुई रोने लगी। किन्तु, उसने अस्तुओं को घृष्टी पर नहीं गिरने दिया, हथेलियों पर ही ले लिया।”

ब्रह्माजी ने उसे बहुत समझाया, लोभ-लालच दिया, डराया धमकाया। साराश कि शाम, दाम, दण्ड, भेट—सर्वा नीतियों का प्रयोग किया, किन्तु वह देवी नहीं मानी, नहीं मानी। स्त्री-हठ ही जो ठहरा। स्त्री जब अपनी बात पर श्रद्धा ज्ञाय, ब्रह्माजी की तो बात ही क्या है, उनके बाप भी उन्हें नहीं समझा सकते।

ब्रह्माजी डाँटकर कहा—“तू हमारे सामने उत्तर प्रत्युत्तर करती है। हमने तुम्हें जिस काम के लिये उत्पन्न किया है, तुम्हें बही करना पड़ेगा।”

सुनकर भरती हुई मृत्यु देवी बोली—“महाराज ! ऐसा अन्याय मत करो, मुझे अधर्म के काम में नियुक्त मत करो। अनीति का आश्रय न लो, मुझे कृपा की दृष्टि से देखो जिन्होंने मेरा कोई भी अपराध नहीं किया, उन निरपराध प्राणियों को मैं क्यों मारूँ ? माता को पुत्र से, पुत्र को माता से, भाई को भाई से, स्त्री को पति से, पति को स्त्री से, बहन को भाई से, भाई से बहन को, सुहृद से सुहृद को, सम्पन्धी से सम्पन्धी को तथा

कुटुम्बी से कुटुम्बी को मैं अकारण क्यों घृयंक करूँ ? वे सब मुझे शाप देंगे, गाली देंगे। मैं इस पाप पूर्ण कर्म को कभी भी नहीं कर सकती। आप इसके लिये चाहें युग मानें या भला !”

ब्रह्माजी ने कहा—“नहीं, तुम्हें करना ही होगा।” अब उसने मोन धारण कर लिया। ब्रह्माजी ने लापर धार कहा, वह बोली ही नहीं। ब्रह्माजी उसकी धर्म-निष्ठा से भीतर ही भीतर तो प्रसन्न हो रहे थे, किन्तु ऊपर से उसे डोंट-दपट रहे थे। मृत्यु ने उनकी एक भी बात न सुनी, वह गङ्गा-किनारे हरिद्वार में तपस्या करने चली गई। दस-घोस, शत, सहस्र, लक्ष, अर्ब, गर्ब ज्यों तक वह पार तपस्या करती रही। कई बार ब्रह्माजी उसके पास आये, उसने उनका यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया।

जब वह तपस्या करते-करते अत्यन्त थरा हो गई, तब ब्रह्माजी उसके समीप गये और बोले—“भद्रे ! देखो, जिसे मैंने जिस काम के लिये उत्पन्न किया है, उसे वह काम करना ही पड़ेगा। चाहे एँ करके करे चाहे चँ करके। तू चाहे तपस्या करते-करते मर जा, तुम्हें सारी बात माननी ही पड़ेगी !”

यह सुनकर मृत्यु फिर रो पड़ी। उसने अपने अश्रु हाथों में लेकर कहा—“महाराज ! मुझे क्यों ऐसे पाप कर्म से प्रवृत्त करते हैं ?”

ब्रह्माजी बोले—“लक्ष्मी ! तू समझती नहीं। इसमें पाप कुछ नहीं है। जैसे जन्म लेना आवश्यक है, वैसे मरना भी आवश्यक है। मरने के बिना सृष्टि का काम चल नहीं सकता। तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। यही नहीं, इसमें तेरा कल्याण होगा। तेरे जो शोक से अश्रु निकले हैं, जिन्हें तूने अपनी अखिलि में रोक रखा है, इनसे असंख्य आधि-व्याधियाँ होंगी। वे ही जीवों को मारकर लाया करेंगी। मृत्यु के समय तो जीवों

की ओर काम और क्रोध को भेजना। जब वे काम-क्रोध के अधीन हो जायेंगे, तब मुझे कुछ दोष भी न लगेगा।" कोई यह भी नहीं कहेगा कि मुझे मृत्यु ने मारा। सब यही कहेंगे, "असुख अधि से मरा, असुख व्याधि से मरा।" यह सुनकर मृत्यु ने प्रसानी की आकांक्षा मान ली। तभी से मृत्यु प्राणियों को मारती है। मरते समय चाहे घृद्धावस्थापन्न ही स्त्री-पुरुष क्यों न हो, उन्हें 'काम' और 'क्रोध' का वेग होता है। पुरुषों का जित्त स्त्रियों से संसर्ग रहा है, जिनमें अत्यधिक आत्मिक रही है, ऐसी ही स्त्रियों को जित्त पुरुषों में अत्यन्त मोह रहा है, वे सब याद आते हैं। वासनाएँ प्रबल हो जाती हैं। वे ही वासना जीव को पुनः संसार में ले आती है। जिसने मृत्यु के पूर्व ही काम-क्रोध को जीत लिया है, वह तो जीवन्मुक्त है, ऐसे पुरुषों की तो मृत्यु होती ही नहीं। शरीर से उठकर कोई सम्पन्न ही नहीं। किन्तु जो 'काम-क्रोध' के वशवर्ती होकर विषयों में आगमन है, उन्हें मृत्यु अत्यन्त भयावसी लगती है, वे मृत्यु के भय से शरीर भयभीत बने रहते हैं। यही 'काम-क्रोध' भा भय भगवान् में सम्यग्ध से हो, तो वे मुक्ति के द्वार हो जाते हैं। जल में गिरने से, क्रोध से, भय से, भगवान् स्मरण आ जाये, तो वह विभवा भी पाये क्यों न हो, दृग् दृग् हो जाया है। रायग, शिखर, कन आदि के पाये ही, अस्माभारों की, कोई भीमा नहीं, किन्तु उतका मोघ और भय भगवान् को लेकर भा, भागने में सब मृत्यु हो गये।"

मुनजी कहते हैं—“मुनियों! जहाँ वे जल में गिराये जायेंगे, मुनी, तभी से उगे शरीर जलनी शरीर से भय भगवान् भा। उस विदित हो गया था कि भगवान् (गुरु) ही भगवान् को पढ़ें।”
अतः यह उद्योग-धर्म, मोक्ष-मार्ग भगवान् ही ही है।

करता था। आठवें गर्भ में देवकी को गर्भवती देखकर जब उसे विस्वामित्र ने बताया, कि अवश्य ही इसके उदर में मुझे मारने वाला विष्णु है, तब से वह नडा संचित रहता। देवकी के प्रसव के दिन गिनना रटना, रात्रि में उसे नींद नहीं आती थी, दिन में उसे भोजन ग्रहण नहीं लगता था। मृत्यु से भयभीत हुआ वह भगवान के जन्म की प्रतीक्षा प्रतिपल, प्रतिसृणु, करता रहता था। वह प्रहरियों को सदा सचेष्ट और सावधान किये रहता था, “इन गर्भ के विषय में कुछ भी प्रमाद न होने पावे। बालक उत्पन्न होते ही मुझे तुरन्त समाचार दिया जाय। इसमें पलभर की भी देर न हो।” सेवक कंस से बहुत डरते थे, अतः सग सावधान रहते थे। कभी कोई रात्रि में अपनी बारी में सोने की तो कौन वह, बैठता भी नहीं था। योगमाया के प्रभाव से उन दिन सय पहरवाले सो गये। वसुदेवजी श्रीकृष्ण भगवान् को गोखल पहुँचा आये। वहाँ से कन्या को भी ले आये। तब तक सय सोते के सोते ही पड़े रहे। जब वसुदेवजी हथकड़ी-बेड़ी पहनकर पूर्ववत् घन्टी धन गये, तब वह कन्या-धनी योगमाया चिल्लाई।

सद्यःप्रसूता कन्या के रुदन की ध्वनि सुनकर सोते हुए प्रहरी तुरन्त जग गये। उनमें से एक दाढ़ी वाला प्रधान प्रहरी अपने साथी से बोला—“अरे, डम्बरसिंह ! भाई, सुम्हे तो निद्रा आ गई। कहां यह रोने की ध्वनि कहीं से आ रही है ?”

डम्बरसिंह बोला—“प्रधानजी ! अपराध क्षमा हो, मैं भी सो गया और जितने थे, सबके सय सो गये।”

प्रधान प्रहरी बोला—“भैया ! तू कहे मत मेरी। मैं कहूँ ना तेरी। ऐसे ही गोलमाल बात रहने दे।” वसुदेवजी से इसी समय उसने तुरन्त पूछा—“बाल-वच्चा हुआ क्या ?”

वहाँ से प्रहरी ने पूछा—“कूफाजी कहिये, कुछ हुआ क्या ?”
 वसुदेवजी ने कहा—“हाँ, भाई, बच्चा हुआ है ।”

वस, फिर क्या था, इतना सुनते ही चार प्रहरी एक साथ दौड़े-दौड़े गये । कस तो पलंग पर पड़ा पड़ा करवटें बदल रहा था । वह तो अत्यन्त उत्सुकता के साथ देवकी के अष्टम गर्भ के यालक की प्रतीक्षा कर रहा था । प्रहरियों ने जाकर द्वार पर से ही कहा—“मुखरेश महाराज की जय ! जय हो ! श्रीमती देवकीजी ने प्रसव किया है ।”

“अच्छा, देवकी के बच्चा हो गया ! यह कहते हुए कस अत्यन्त ही हड़बड़ाहट के साथ तुरन्त पलङ्ग पर से उठकर खड़ा हो गया । उसके बड़े-बड़े बाल बिखरे हुए थे । सिर पर न पगड़ी थी, न मुकुट । वह शय्या पर जैसे पड़ा था, वैसे ही हाथ में पड़ग लेकर कारावास की ओर नये पैंरो ही खड़ा । एक भपट्टे में वह कारावास में पहुँच गया । कारावास के अध्यक्ष, निरीक्षक तथा समस्त प्रहरी अपनी-अपनी पोशाक पहने पहरों पर तत्पर थे । सबने राजा को प्रणाम किया । प्रधान प्रहरी ने पहला बाला खोला । कम ने इधर-उधर देखकर कहा—“ताला-जंगला सन ठीक है न ?”

निरीक्षक ने कहा—“हाँ, प्रभो ! सब ठीक है ।”

यह सुनकर वह शीघ्रता से भीतर चुसा । सभी प्रधान कर्मचारियों ने उसका अनुसरण किया । तालियों के शुद्ध को रत्न-रत्नाने हुए प्रधान प्रहरी आगे दौड़ता जाता था । फाटक पर पहुँचने के पुरे ही वह तुरन्त द्वार खोल देता । इस प्रकार मात्र ताले खोलकर, सात फाटकों को पार करके, कस देवकीजी के प्रसविकापर में पहुँच गया । वहाँ उसने देखा कि वसुदेवजी के हाथ पैरों ने हथकड़ी चेड़ी पड़ी हैं, प्रसव की पीड़ा को प्रदर्शित

करती हुई भगवती देवकी भयभीत हुई कराह रही हैं। उन्होंने दूर से हा मृत्यु के समान, साक्षात् काल के समान, भूतिमान यमराज के समान, आते हुए अपने भाई कंस को देखा। उनका सम्पूर्ण शरीर थर-थर काँप रहा था। इतने में ही कंस ने कर्कश स्वर में दहाड़कर पूछा—“देवकी ! क्या हुआ है तेरे ?”
 देवकी देवी ने दीनता के स्वर में कहा—“भैया ! यह तो छोरी है।”

कंस ने आश्चर्य चकित होकर कहा—“क्या कहा ? छोरी है ! यव के छोरी हुई ! अच्छा, ला उसे मुझे दे।”

देवकी देवी ने दुःखी होकर कहा—“भैया ! जो है, वह तुम्हारे सामने है। परन्तु, भैया ! इस बच्ची को लेकर तुम क्या करोगे ? मेरे और बच्चों के समान इसे भी तुम मारना चाहते हो क्या ? भैया, ऐसा मत करो। देखो, भला यह बच्चा तुम्हारा क्या अपकार कर सकती है।”

कंस ने डोंटकर कहा—“बहुत व्यर्थ की बातें न घना। सीधे अपनी बच्ची को मुझे दे दे। नहीं तो मैं उसे बलपूर्वक तुमसे छीन लूँगा।”

देवकीजी बोली—“भैया, मेरी काहे को है, यह तो तेरी ही है। यद्यपि है तो यह लोक और शास्त्र के विरुद्ध, किन्तु दक्षिण देश की यह प्रथा है कि वहन अपनी लड़की का भाई के लड़के के साथ विवाह कर देती है। इस घोर विपत्ति से बचने के समय मैं भी इस लोक-विरुद्ध धर्म का आचरण करूँगी। बड़ी होने पर मैं इसका तुम्हारे लड़के के साथ विवाह कर दूँगी। तुम इसे अपनी पुत्र-वधू मानकर छोड़ दो। इतने वीर होकर तुम्हें स्त्री-वध नहीं करना चाहिये।”

कंस ने कहा—“मैंने मृत्यु से बचने को ही तो तेरे सब पुत्रों को

मारा है ! अष्टम बालक से आकाशवाणी ने मेरी शत्रु बतलाई थी ।
इसे मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ?”



देवकी बोली—“मैया ! तुमने क्या मारा हूँ, मेरे भाग्य से
ही वे मर गये । उनकी देववश ही शत्रु हो गई । वे कैसे अग्नि
के समान तेजस्वी थे । उनकी शत्रु तुम्हारे हाथों ही लीखी थी ।
उनको तुमने मार दिया, किन्तु अब तो कृपा करो, अब तो
वह एक कन्या रह गई है । यह अबला तुम्हारा क्या अनिष्ट
कर सकती है ! इसे तो छोड़ दो । मेरे सन्तोष के लिये इसे मत
मारो ।”

कंस ने कहा—“देवकी ! शत्रु से सभी को भय होता है ।
मैं इसे तुम्हें कैसे दे सकता हूँ ?”

देवकी ने गिड़गिड़ा कर कहा —“अरे, भैया ! तुम सर्व समर्थ हो, जो चाहो कर सकते हो। तुम दानी हो, दयालु हो, मेरे ऊपर दया करो। यह वालिका तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकती। देखो, मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ। धर्या होने के अवसर पर भाई-बहन का वस्त्राभरण देता है। तुम मुझे यही भीरा दे दो। अब मेरे धर्या होने की क्या आशा है। प्रतीत होता है, यह मेरी अन्तिम सन्तान है। लड़का तो कोई रहा नहीं। यह एक पेट पुछनी लड़की रह गई है। अपने धर्यों के मारे जाने से मैं अत्यन्त दुःखी रह रही हूँ। सो, मेरे राजा भैया, मुक्त अभिमान की यह बिनती तो स्वीकार कर लो। मुझे इस अन्तिम सन्तान को तो, दे ही दो।”

सुतर्जुन कहते हैं—“मुनियो ! इस प्रकार देवकी देवी ने कस की बहुत-कुछ अनुनय वितथ की, किन्तु उस दुष्ट का हृदय नहीं पसीजा। वह कन्या को मारने पर कटिबद्ध हो गया।”

छप्पय

कन्या मोंगी रोइ देवकी बोली भैया !
 पुत्रीसँ लख बहिन तुम्हारी मैं हूँ गैया ॥
 मारे सब सुत किन्तु दया कन्या पे कीजे ।
 परि पैरनि पे कल्ले याचना जाहूँ दीजे ॥
 अन्तिम मेरी धीय है, बिह अनरय का करेगी ।
 रक्को रक ते हाथ च्यो, देह सदा नहिं रहेगी ॥

योगमाया की भविष्य वाणी

[८३५]

हि मया हतया मन्द जातः सल्लु तन्मन्त्रकृत् ।
यत्र क्वना पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणान् वृथा ॥ॐ

(श्री भा० १० स्क० ४ अ० १२ श्लोक)

छप्पप

एक न राल ने सुनी तुला पत्थर पै पटकी ।
सटकी करत तुरत बनी दची नम चटकी ॥
अष्ट भुजी बनि गई दिव्य आयुध घारे कर ।
शङ्ख, चक्र, धनु, खड्ग, चर्म, तिरशूल, गदा शर ॥
लक्ष्य कस छू करि कहे, मद मोड़ सारे वृथा ।
प्रकटयो तेरो राज ता मति दै बालनि कूँ-वृथा ॥

समुप्य शक्तिभर सिद्धि के लिये त्रिधान बनाता है । उसमें सफलता हो जाता है, या अशुभकार नष्ट जाता है । असफलता होती है, तो वीनता आती है । यह वीनता ही कभी कभी भगवान् को भिला देती है । पुरुषार्थ पर समुप्य की आस्था कम हो जाती है । असफलता ही भावी सफलता की ओतक है । जो गयाता है, वही पाता भी है । अतः असफलता हमें शिक्षा देने,

ॐ श्री गुरुदेव जो कहते हैं—“राजन् ! पत्थर पर पटकने पर योग माया कस को लक्ष्य करने आकाश में कह रही है—रे मन्दसति ! मुझे मारने से तुझको क्या मिलेगा ? तेरा मत करने वाला काल तो कहीं क्षय हो उत्पन्न हो गया । वह तेरा पूज साधु है । तू कबो मकारण आचार्य बालकों की हिंसा कर रहा है ? ऐसा मत कर ।

मसार का यथार्थ ज्ञान कराने, के निमित्त आती है। इसलिये असफलताओं को देखकर घबराना न चाहिये, बल्कि और भी तत्साह के साथ अपने कर्म की सिद्धि में लग जाना चाहिये।

सूतजी कहते हैं—“मुनियों ! देवी देवकी ने अपने कर्कर्म भाई से अत्यन्त हीन होकर कन्या पर दया करने की प्रार्थना की, किन्तु उस दुष्ट ने तो दया का पाठ ही नहीं पढ़ा था। उसका स्वभाव ही क्रूर था, अतः उसने देवकी माता की बातों की ओर ध्यान ही नहीं दिया। माता चर्चवी की हृदय से विपदाकर निरन्तर अश्रु बहा रही थी। दोनों हाथों से उसे बत्त पर विप-वाये हुये अत्यन्त हीन भाव से विलाप कर रही थी। किन्तु, कस ने उन्हें श्लोच में भर कर भिड़क दिया। डटकर बोला—“जिसके लिये मैंने तुम दोनों को कारावास में बन्द किया था, उसे ही तू बचाना चाहती है ? चल, हट, आई वंडी दया की भिलारिणी !” यह कहकर उसने बल पूर्ण कन्या को देवी देवकी की गोद से रींचकर छीन लिया।

यह सद्यःजित बालिका थी, अत्यन्त सुन्दरी, सुकुमारी तथा कोमलाङ्गी। अपनी बहन की लड़नी थी, दया करने योग्य थी, किन्तु दुष्टों के मन में दया नहीं। उसने उस लड़की को घुमाकर पत्थर पर पटक दी। वह कस के हाथ से सटकी, तुरन्त ही उसे यह यात सटकी, तब तक देवी उसके सिर पर पैर रखकर नभ में सटकी। कस परम विग्नित बना इस लीला को देख रहा था। योगमाया के ऐसे अद्भुत प्रभाव को देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया। ऊपर उसने जो देगा उसे, तो उसके विस्मय का ठिकाना ही नहीं रहा। बालिका वेगते-वेगते बड़ी सुन्दरी बाला बन गई। भगवान् की अतुजा - उनकी छोटी बहन - वह देवी दिव्य रूपा हो गई है। उसकी कालि से यशों विराय आसक्त

हो रही हैं। वह अष्टभुजी देवी होकर दिखाई पड़ रही है। आठ भुजाओं में वह वृथक वृथक अष्ट आयुध धारण किये हुए है। चार हाथों में तो शङ्ख, चक्र, गदा और त्रिशूल हैं। शेष चार हाथ में वह धनुष-बाण, खड्ग और चर्म (डाल) धारण किये हुए है। चारों ओर से सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर,



नागगण आदि उन्हें घेरे हुए खड़े हैं। वे सब हाथों में देवी का मंड उपाहार के लिये त्रिविध वस्तुएँ लिये हुए हैं और अत्यन्त हा विनीत भाव से, सुमधुर कण्ठ से उनकी स्तुति कर रहे हैं। कल

चकित-चकित दृष्टि से देवी की ओर देख रहा था। देवी बोली—
“खरे मन्दमति! मुझ माया को मारने से तेरा कौन-सा काज सधेगा? क्या तू मुझे मारकर जीवित बच सकता है? जिसे मारने के लिये तूने अकारण इतने निर्दोष बालकों की हत्या की है, वह तो कहीं उत्पन्न हो गया।”

कंस ने पूछा—“कहाँ उत्पन्न हो गया महामाया जी?”
महामाया बोली—“उत्पन्न हो गया, हो गया। यहाँ कहीं तेरे ब्रज में हुआ है। अधिकतम बतारङ्गी (वह तेरा पुराना शत्रु विष्णु ही है) वह तुझे मारेगा, अवश्य मारेगा। अब तो व्यर्थ बालकों की हिसा करना छोड़ दे। या अब तेरी जो इच्छा हो, सो कर।”

सूतजी कहते हैं—“महाराज! योगमाया देवी कंस से ऐसा कहकर तुरन्त अन्तर्धान हो गई। वे ही पृथ्वी के अनेक स्थानों से भिन्न भिन्न नामों से प्रकट हुईं। वे सब शक्ति-पीठ कहाते हैं, जहाँ भक्त-गण श्रद्धा सहित देवी जी का पूजन करके अभीष्ट फल पाते हैं।

कंस पर देवी के इस कथन का बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने मन में सोचा—“खरे, जिसके लिये इतना प्रयत्न रचा, अपनी बहन-बहनोई को शत्रु की भोंति कारावास में रखा, वह तो इनके यहाँ उत्पन्न न होकर कहीं ब्रज में अन्यत्र उत्पन्न हो गया है। इनको मैंने व्यर्थ ही कष्ट दिया! ये तो कितने सच्चे हैं, अपने पञ्चों को स्वयं ही मुझे मारने के लिये दे देते थे। ये कितने नरल, सदाचारहीन, सत्यवादी और सहिष्णु हैं! इसके अविश्वसनीय कठोर, क्रूर, कदापि और कायर हैं, जो अपने सगे-सम्बन्धियों को इतना कष्ट दे रहा हैं। मैंने इनके साथ अकारण अन्याय किया है।”

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—“सूतजी ! हम एक बात आप से पूछते हैं। वसुदेव जी तो बड़े धर्मात्मा थे। असत्य से वे बहुत डरते थे। वे जो कहते थे, वही करते थे। फिर उन्होंने कंस के साथ निश्वासघात क्यों किया ? एक बार जब वे यह प्रतिज्ञा कर चुके, कि मैं तुम्हें देवकी के सभी पुत्रों को लाकर दे दूँगा, फिर उन्होंने श्रीकृष्ण को क्यों छिपाया ? क्यों वे अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध बोरी से श्रीकृष्ण को ले जाकर गोकुल में छिपा आये ?”

यह सुनकर सूतजी गम्भीर हो गये और बोले—“देखिये, महाराज, धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। सत्य क्या है, असत्य क्या है, इसका निर्णय साधारण लोग नहीं कर सकते। कभी सत्य-सा दीखने वाला कार्य असत्य सिद्ध होता है, कभी असत्य-सा दीखने वाला कार्य सत्य माना जावा है। आपके इस प्रश्न का उत्तर कई प्रकार से दिया जा सकता है। अच्छा, पहले आप यह बताइये कि धर्म क्या है ?”

शौनकजी ने कहा—“वेद में जो प्रतिपादित है, वही धर्म है। वेद जिसे अघर्म कहे, वह अघर्म है।”

सूतजी ने पूछा—“अच्छा, महाराज ! वेद क्या है ?”

शौनक जी ने कहा—“भगवान् का निःश्वास ही वेद है। भगवान् की वाणी का ही नाम वेद है।”

सूतजी बोले—“जब भगवान् की वाणी ही वेद है और वेदों में जो प्रतिपादित है, वही धर्म, तो भगवान् की ही आज्ञा तो परम धर्म हुई। वह वेदातिरिक्त धर्म से भी बढ़कर है। तब तो कोई दोष की बात नहीं। तो भगवान् ने चतुर्भुज रूप से प्रकट हो कर साक्षात् आज्ञा दी—“हमें नन्द जी के गोकुल में पहुँचा दो।” ऐसी दशा में उन्हें कूरकर्म कंस से की हुई प्रतिज्ञा का पालन

करना धर्म या भगवान् की आज्ञा का पालन करना ? हम तो कहते हैं भगवान् की आज्ञा ही परम धर्म है ।

दूसरी बात यह है, कि स्त्रियों हठ पर थड रहीं हों, तो उन्हें टालने के लिये त्रिषाह आदि के सम्बन्ध में, हँसी विनोद में, वृत्ति की रक्षा में, प्राण-संकट आने पर, गो ब्राह्मणों की रक्षा में, तथा और भी किसी के प्राण नचते हों, तो उस समय का भूठ ऐसा निन्दित नहीं माना गया है । किसी के प्राण जा रहे हों और अपने भूठ धोलने से प्राण धच जाते हों, तो उस समय भूठ धोल देना कोई दोष नहीं । वसुदेव जी ने सोचा—“यह अष्टम गर्भ है, इस में सावान् श्रीमन्नारायण हैं । ये धच जायेंगे तो कस के दु ख से दु ख समस्त प्रजा का क्या होगा । यद्यपि कल इन्हें मार नहीं सकता, फिर भी उसके पास इन्हें ले जाऊँ और इन्होंने उससे लड़ाई की, तो एक अलौकिक बात हो जायगा । मानवी लीला न चलेगी ।” यही सच सोचकर वे बालक कृष्ण को गोकुल में छिपा आये ।

दूसरी का जिससे उपकार हो उसका सब प्रकार रक्षा करना परम धर्म है । जहाँ सत्य बात कहने से किसी का अनिष्ट होता हो, नहीं सत्य न कहकर गोलमटोल उत्तर दे दें । इस विषय में एक कथा है । एक महात्मा सत्य ही बोलते थे । एक दिन एक गो दोड़ी आई और वह समीप के ही गहन वन में छिप गई । इतने में ही उसका पीछा करता हुआ एक वधिव आया । उसने पूछा—“ब्रह्मन् ! मेरी एक गो इधर आई थी । आपने उसे देखा है क्या ? वह फिर गई ?”

महात्मा ने सोचा—“इस गो बताता हूँ, तो मुझे गो के बध का पाप लगेगा, नही बताता हूँ, तो असत्य भाषण का पाप लगेगा ।” अतः वे बोले—“देखो, भाई ! देवना काम आँखों का

है, किन्तु उनमें बताने की शक्ति नहीं। बताने का काम वाणी का है, किन्तु उसमें देखने की शक्ति नहीं। अतः जिन्होंने देखा है, वे कह नहीं सकती, जो कहती है, उसने देखा नहीं। मैं तुम्हें क्या बताऊँ ?” यह सुनकर बधिक हँस पड़ा। वह बधिक नहीं था, सदाव् धर्म ही थे।

इसके विपरीत एक और कथा है। एक कौशिक नामक महात्मा सत्य ही बोलते थे, या वे मीन रहते थे। एक दिन कुछ लोग डरकर उनके आश्रम के समीप छिप गये। कुछ देर में वे बध करने वाले भी हाथ में खड्ग लेकर आये। उन्होंने पूछा— ब्रह्मा ! यहाँ कुछ लोग हाँपते हुए, डरे हुए, दौड़कर आये हैं। आपने उन्हें देखा है ?”

वे तो सत्यवादी ही ठहरे, बोले—“हाँ, वे आश्रम के पीछे छिप रहे हैं।”

इतना सुनते ही वे सब खड्ग लेकर वहाँ पहुँच गये और सबका बध कर डाला। इससे उन सत्यवादी मुनि को नरक जाना पड़ा। यह जो उन्होंने सत्य मापण किया, वह असमय किया। इसीलिये वह असम ही हुआ।

इसके विपरीत एक कथा है। एक अम्बा पशु था, ब्रह्माजी ने वर पाकर वह सब को पीड़ा देता था। कोई उसे वरदान के प्रभाव से मार नहीं सकता था। इतने में ही एक ब्याक नामक व्याघ्रा आया। वह अम्बा पशु रात्रि में पानी पी रहा था। पानी पीते असावधान अम्बे पशु को मारना धर्म-विरुद्ध है, किन्तु उस व्याघ्रा ने उसे मार डाला। उसके मरते ही देवताओं ने उस व्याघ्रा के ऊपर पुण्यवृष्टि की और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। ऊपर से यह अधर्म सा दोस्तता था, किन्तु वास्तव में धर्म था। इस प्रकार बसुदेवजी का भगवान् को गोकुल में छिपा आना

किसी भी प्रकार अधर्म नहीं था। उन्होंने तो भगवत्-प्राज्ञा से ही यह सब कुछ किया।'

इस पर शीमकजी ने कहा—'हाँ, सूतजी! भगवत्-प्राज्ञा से तो जो कुछ भी किया जाय, वही धर्म है। सब कृपा करके हमें आगे की कथा सुनाइये। योग-भाष्या की आकाशवाणी सुनकर कस ने फिर क्या किया?'

सूतजी बोले— महाराज! कस को अपने क्रिये पर पश्चात्ताप हुआ और वह देवकी वसुदेव के प्रांत सोहाद्र प्रकट करने लगा। इस प्रसङ्ग को आपको सुनाता हूँ, आप श्रद्धा सहित उसे श्रवण करें।'

छप्पय

यो कहि अन्तरधान भई फिरि दीखी नाहीं ।
विन्ध्याचलमहँ जाइ भई पुजित जगमाहीं ॥
सुनि चिन्तित अति भयो कस पुनि पुनि पछितावे ।
जाइ देवकी निकट दुलित है को समुझावे ॥
करि बन्धन तैं सुनि पुनि, करहि प्रदर्शित प्रेम अति ।
चिकनी चुपरी बात करि, देहिमुलावो मूढ़ मति ॥



कारावास से श्री देवकी वसुदेवजी की मुक्ति

[८३६]

तथाभिहितमाकर्ण्य कसः परमविस्मितः ।

देवकी वसुदेव च विमुच्य प्रश्रितोऽग्ररीत् ॥॥*

(श्रीमा० १० स्क० ४ अ० १५ श्लो०)

कृष्णाय

बोल्यो—‘मगिनी ! भाग ! छमहु अपराध हमारे ।
मैंने शठता करी तुम्हारे शिशु सब मारे ॥
सुरनि करथो छल कपट पाप मोते करवाये ।
करि नमवावी श्रृषा वहिन के सुत मरवाये ॥
अस्तु, मई सो मई अब, हौं लज्जित अरु दुस्खित अति ।
भोगे हैं प्रारब्धवश, सब सुख दुख सम्पति विपति ॥

मनुष्य अपने को जैसे क्षमा कर देता है, वैसे अश्व को भी क्षमा कर दे फिर बरभाव दानुता तथा कलह न हो । हमसे कोई अपराध बन जाना है तब तो कह देते हैं—चलो, जा हुआ सा हो गया । किन्तु दूसरो के अपराधो को हम जीवन भर नहीं भूलते मरते समय अपने परिवार वालो से भी कह जाते हैं, उनसे हमारे साथ ऐसा बर्ताव किया था, तुम भी इसके साथ ऐसा ही करना । अपने से कोई अपराध हो जाता है तो प्रारब्ध को दोष देते हैं । दूसरो से हो जाता है तो उसके प्राण खा

* श्री वसुदेवजी कहते हैं— राजन ! योगमाया की बात सुनकर कस को परम विस्मय हुआ । उसने तुरन्त देवकी और वसुदेवजी को बचपन से मुक्ति करने भरमन्त विनीत भाव से कहा ।

जाते हैं, तुमने ऐसा किया ही क्यों ? यही भिन्न दृष्टि है इसी का नाम पक्षपात या स्वाध है, ऐसे लोग ऊपर से तो बड़ा भारी ज्ञान छांटते हैं किन्तु भीतर ही भीतर उनमें स्वार्थ सिद्ध करने की भावना भरी रहती है। दुरात्माओं के ये ही लक्षण हैं।

सुतजी कहते हैं—“मुनियो ! योगमाया के वचनों को सुनकर कम को चेत हुआ। उसने सोचा—“अरे, मैं तो ठगा गया। जिस देवकी व अष्टम गर्भ से मुझे भय था, वह तो गोकुल में ही कहीं अग्न्यत्र उत्पन्न हो गया। अब क्या किया जाय, अब तो इन देवकी और वसुदेव की वन्दी बनाकर रखना पड़ा है। यदि यह बात पहले से ही विदित होती, तो मैं इन्हें बन्दी ही क्यों बनाता। मुझसे यह तो भूल हो गई।” फिर सोचने लगा—“बोई बात नहीं। हो ही जाता है, भूल मनुष्य से ही तो होती है। ऐसा कौन-सा मनुष्य है, जिसने जीवन में कभी भूल न की हो। अब मैं इधर-उधर की बातें कहकर इन्हें प्रसन्न कर लूँगा।” यही सोचकर वह देवकी और वसुदेवजी के पास गया।

अत्यन्त ही सौहार्द प्रकट करते हुए उसने देवकी से कहा—“बहिन ! मेरे द्वारा तुम्हें बड़ा क्लेश हुआ। बेचारे वसुदेवजी की भी व्यर्थ में बहुत-सी विपत्तियाँ उठानी पड़ी। आकाशवाणी सुनकर मेरी भी कंसी दुःखि भ्रष्ट हो गई, मैंमा मैं बधिक बन गया, कंसा राक्षस भाव मुझमें आ गया, जो आपके सद्यःज्ञान बालको को निन्द्यतापूर्वक मार डाला।”

देवकी न दुःखित होकर कहा—“अरे, भैया ! कौन जिसे दुःख देता है, सब अपनी करनी व फल हैं।”
कस ने पञ्चात्ताप के स्वर में कहा—“तो तो है ही। फिर भी तू मेरी सहिन है, ये मेरे बहनोई हैं, मुझे तो अपने सगे,

सम्बन्धी, सुहृद् तथा कुटुम्बवालों पर कृपा करनी चाहिए, उनकी सहायता करने चाहिये। सो तो मैंने कुछ किया नहीं, उससे तुम्हें बड़े बड़े क्लेश दिये। आपका स्वाभाविक स्नेह छोड़कर मैंने दृष्टता पूर्ण व्यवहार किया। इन वृत्तियों के कारण कौन से नरको में मुझे जाना होगा। कौन-कौन-सी प्रमयातनायें मुझे सहनी पड़ेगी।”

देवकी जी ने कहा—“भैया ! तुम तो मुझे बहुत प्यार करते थे, अपनी पुत्री के सट्टा मानते थे, अब से तुमन आकाशवाणी सुनी, सभी से तुम्हारे भाव बदल गये।”

‘स’ ने कहा—‘हाँ, बहिन ! मुझे इसी बात का तो आश्चर्य हो रहा है। मनुष्य भूठ बोले तो बोले। अब विश्वास भी भूठ बोलने लगा है। आकाशवाणी तो सदा सत्य ही होती है भेरे जिये वह भी असत्य मिट्ट हुई। उसी के चक्कर में पड़कर मैंने कैसे-कैसे धार पाप किये। अपने कितने तेजस्वी होनहार भानजों को पंदा होते ही मार डाला। अब क्या कन्या को भी निर्दयता-पूर्वक पापान पर पटका। आप अपने पुत्री को मृत्यु से दुखी होगे। इन पापों के कारण मैं तो जीवित ही मृत्यु के समान हूँ। अस्तित्व के सट्टा मैंने पाप किया है।’

भाँखों में आँसू भरकर देवी देवकी ने कहा—“भैया दुखी होने से क्या होता है, अब लोटकर थोड़े ही आ सकते है ?”
कस ने कहा—‘, हाँ अब यही सोच समझकर तो संतोष करना पड़ेगा। अब बोक करने से ही क्या हो सकता है, उन पेवारों का प्रारब्ध ही ऐसा था, उनके भाग्य में ऐसा ही लिखा होगा। ससार के सभी प्राणी दैवाधीन होकर भटकते रहते हैं। जिसकी जहाँ जिसके द्वारा मृत्यु बढ़ी होती है, उसकी वही उसी के द्वारा मृत्यु हो जाती है। इसे कोई अन्यथा करने में समर्थ

नहीं। जैसा होना होता है, वैसी ही बुद्धि बन जाती है। कि जन्म के साथ मृत्यु तो लगी ही रहती है। जिसने जन्म लिया है उसे भाज या तो वर्ष के पश्चात् मरना तो अवश्य ही है। कि मरना भी एक येन है। वास्तव में तो मृत्यु होती ही नहीं !”

देवकी जी ने कहा—“मृत्यु होती क्यों नहीं भैया।” जीता हुआ आदमी प्रत्यक्ष मरा हुआ दिखाई देता है।”

कम ने कहा—“अच्छा, तू विचार कर मरता कौन है। शरीर में दो वस्तुएँ हैं, एक शरीर एक आत्मा। एक क्षण है दूसरा क्षण। आत्मा तो न मरती है, न जन्म लेती है, वह तो अजर, अमर, नित्य और नाश्वर है। शरीर तो क्षणभंगुर है ही। धाज बना, कल बिगड़ा। आज जो मनुष्य है, कल पशु योनि में चला जायगा, फिर पक्षी बन जायगा, किन्तु जिसके आश्रय से ये देह प्राप्त करता है, उसमें तो कोई विकार नहीं। जैसे मिट्टी है, उसके घड़े, सकोरे, नाद, हंडी तथा मटकी आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के बर्तन बनते हैं। कुछ काल में बर्तन फूट जाते हैं। बर्तनों के नष्ट होने पर मिट्टी नष्ट नहीं होती। बर्तन बनने के पूर्व भी मिट्टी थी, फूटने पर भी मिट्टी ही गई। बीच में केवल उसका नाम रूप बदल गया। इसी प्रकार देह उत्पन्न होते रहते हैं, नष्ट होते रहते हैं, इससे आत्मा में विकृति नहीं होती। वह तो शुद्ध निर्विकार एकरस बना रहता है।”

देवकी जी ने कहा—“तब फिर भैया ! बच्चा पैदा होने पर लोग हप क्यों मनाते हैं, मरने पर इतने क्यों रोते हैं ?”

कम ने कहा—“यह लोगों की भूलतः है, अज्ञान के कारण ही ऐसा करते हैं। उन्हें यथार्थ तत्त्व का ज्ञान नहीं होता। कुछ को कुछ मान बैठे हैं। टेढ़ो-मेढ़ी पड़ी रस्सी को भ्रमवश सर्प मानकर भयभीत हो रहे हैं। कुछ का कुछ मान लिया है।

ये देह-नेह आदि नद्वन्द्व और अनात्म पदार्थ हैं, इन अनात्म-पदार्थों में अज्ञान के कारण आत्मबुद्धि कर ली है। देह और आत्मा का भेद न जानकर देह को ही आत्मा माने बैठे हैं। इसी मूर्खतावश सब अपनी देह को ही सुखी बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। दूसरों को अपने से भिन्न मानकर उनसे राग द्वेष कर रहे हैं। राग-द्वेष से भेद-भाव होता ही है। यह भेद ज्ञान ही सयोग - त्रियोग का कारण है। मेरा शत्रु मर गया, अच्छा हुआ। मेरे मित्र का पुत्र मर गया, बुरा हुआ। यह भेद-भाव ही दुःख-सुख का कारण है। यह सुख दुःख ही प्राणिमों को पुनः-पुनः ससार में ले घाते हैं। पुण्य और पाप की वासनाओं से ही दूसरा शरीर लेना पड़ता है। पुण्य विशेष है, तो सुख मिलेगा। पाप विशेष है, तो दुःख मिलेगा। इन वासनाओं में ही बँधे रहने के कारण ससार चक्र की निवृत्ति नहीं होती। 'पुनरपि जनन पुनरपि मरणम्' यह क्रम चलता ही रहता है। इन्हीं सब बातों को समझकर लड़ो! तू शोक मत कर। मेरे ऊपर शोध भी मत करना; इसने ही मेरे बच्चों को मारा है, कौन किसे मार सकता है, कौन किसे जिंदा सकता है। सभी जीव अपने-अपने कर्मों का फल भोग रहे हैं। इस विषय में तुम एक दृष्टान्त सुनो।

एक ब्राह्मण था, वह गाड़ी लेकर अपनी स्त्री को लाने ससुराल में जा रहा था। चलने चलते उसके बेल थक गये। समीप ही उसने एक बड़ा सुन्दर उद्यान देखा। वहाँ एक सुन्दर सरोवर था, ब्राह्मण एक वृक्ष के नीचे गाड़ी खोलकर बैठ गया। विश्राम करके वह सरोवर में स्नान करने लगा। वहाँ उसने बया देखा कि एक भिखारिणी वहाँ पड़ी सहप रही है। वह व्यास के कारण व्याकुल हो रही थी। उसने क्षीण-

स्वर में कहा—“कौन है, तनिक दया करके मुझे पानी पिला दे।”

ब्राह्मण को दया आ गई, वह लोटा में पानी भरके उसके पास गया। जाकर जो उसने देखा, उसे देखकर उसे बड़ी दया आई। भिखारियों के सभी कपड़े मंले-कुचले और फटे-पुराने थे। गौर वर्ण का उसका शरीर था, अभी-अभी उसने युवावस्था में पदार्पण किया था, उसका मुख अत्यन्त ही सुन्दर था, किन्तु सम्पूर्ण शरीर में गलित कुष्ठ था। पावों में कीड़े पड़ रहे थे और वे बिलबिला रहे थे। सम्पूर्ण शरीर से दुर्गन्धि आ रही थी, उसके पास भी कोई खड़ा नहीं होता था। ब्राह्मण ने नाक बन्द करके उसे पानी पिलाया और पूछा—“कुछ खाओगी?”

सतृष्ण नेत्रों से कृतज्ञता प्रकट करते हुए उसने सिर हिला दिया। ब्राह्मण अपनी गाड़ी में से सत्तू ले आया। सत्तू सानकर उसने दिया। कई दिन की वह भूखी थी। भोजन करके उसकी शरीर की सुधि आई। उसने ब्राह्मण के प्रति अपना कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—“भगवान् आपका भला करे, मुझ पतिता के ऊपर आपने बड़ी दया की।”

उस स्त्री को ऐसी दशा देखकर ब्राह्मण को बड़ी दया आ गई। वह उसके पास बैठ गया, उसने कहा—“मैं तुम्हारी ओर दया सहायता कर सकता हूँ।”

इतना सुनते ही वह स्त्री फूट-फूटकर रोने लगी—“उसकी आँखों की कोर से निरन्तर आँसू बह रहे थे। रोते-रोते उसने कहा—“संसार में मुझसे अधिक पतिता और कौन होगी। मैं तो समझती थी संसार में मुझसे कोई बोलेगा भी नहीं, किन्तु धर्म पता चला, संसार में पतियों से भी प्रेम करने वाले दयालु पुरुष

हैं। आप मेरे ऊपर यदि कुछ दया करना चाहते हैं, तो मुझे कहीं से थोड़ा दिप ला दें या किसी नदी में फेंक दें। इस जीवन से मैं ऊब गई हूँ, मरना चाहती हूँ, किन्तु मुझ अभागिनी की मृत्यु भी नहीं आती।” यह कहकर वह फिर मुल ठोपकर रोने लगी।

ब्राह्मण उसकी मानसिक वेदना को समझ गया, कि यह अत्यन्त कष्ट में है, किन्तु उसकी बुद्धि में यह बात नहीं आ रही थी कि मैं उसकी क्या सेवा करूँ? इतने में ही एक वृद्धा वहाँ आ गई। उस स्त्री को देखकर वह भी वहाँ खड़ी हो गई। उसने हृदय में भी दया आ गई। उसने कहा—“इसे क्या हो गया है?”

ब्राह्मण बोला—“माताजी! यह कोई बड़ी दुखिया है, यहाँ कहीं कोई आस-पास वैद्य हो तो बताओ, इसकी कुछ चिकित्सा कराई जाय। मुझमें जो बल सकेगा, वह मैं सहायता करने को तैयार हूँ।”

वृद्धा बोली— भैया! वैद्य को तो मैं जानती नहीं। यहाँ से चार-पाँच कोस दूरी पर गया किनारे एक महात्मा हैं। वे भयूत देवों बहुत से रोग अच्छे कर देते हैं।”

ब्राह्मण ने कहा— मुझे खबर हो जाना है यदि यह चलना चाहें तो मैं ले चलूँ।”

स्त्री तो यह चाहती ही थी। वह सहज तैयार हो गई। ब्राह्मण अपनी गाड़ी ले आया। वृद्धा की सहायता से उसे गाड़ी में लिटाया और उसे लेकर वह महात्मा के समीप पहुँचा। साय-यास का समय था, ब्राह्मण ने महात्मा को प्रणाम किया, और उस स्त्री की सब बधा गुनावर भभूती देने की प्रार्थना की। रोते-रोते उस स्त्री ने भी महात्मा जी की विलय की। महात्मा बोले—

‘देखो भाई, सभी जीव अपने-अपने कर्मों का फल भोगते हैं। यह भी धन कर्मों के फल से इस दया को प्राप्त हुई है।’
 ब्राह्मण ने पूछा—‘प्रभो! आप तो सर्वज्ञ हैं, इसने ऐसा कौन-सा पूर्वजन्म में पाप किया था, जिससे इसको ऐसी दुर्गति हुई?’

महात्मा बोले—‘पूर्व जन्म में यह एक बड़े धनिक वैश्य की कन्या थी। इसका ब्याह माता पिता ने एक दूसरे धनिक वैश्य पुत्र के साथ किया। जिसके साथ इसका विवाह हुआ था, उसका एक छोटा भाई और था। वह अत्यन्त ही सुन्दर था। उसके साथ इसका सम्बन्ध हो गया। यद्यपि पहिले दोनों भाइयों में बड़ा प्रेम था, किन्तु इस अनुचित सम्बन्ध में दोनों भाई एक-दूसरे के रक्त के प्यासे बन गये। छोटे भाई ने अवसर पाकर बड़े भाई का वध कर दिया और उसे नदी में फक आया। अब तो यह खुल्लमखुल्ला उसके साथ रहने लगे। इसे सुरापान का, मांस खाने का भी व्यसन हो गया। इसका देवर पशु-पक्षियों को लाता, यह स्वयं उनको मारकर उनके मांसों को विविध प्रकार से बनाकर खाता। कुछ दिनों में सब धन समाप्त हो गया। धन न रहने से आरम में लड़ाई होने लगी। अन्त में वह देवर भी इसे छोड़कर भाग गया। इसने किसी और से सम्बन्ध कर लिया। वह इसे निर्वाह के लिए द्रव्य देता था।

तुम पूर्वजन्म में भिक्षुक थे। एक दिन अत्यन्त भूखे इसके द्वार पर आ गये। इसने दया करके तुम्हें भोजन करा दिया। भोजन करके तुम चले गये किन्तु इसके रूप को देखकर तुम्हारे मन में इसके प्रति कुछ आसक्ति हो गई। कुछ दिनों पश्चात् सर्प ने इसे डस लिया और यह नरको में ले जाई गई। वहाँ नरक की इसे भयकर वेदनाएँ दी गईं। अब इसके कुछ पाप शेष रहे,

वो यह एक शूद्र की कन्या हुई। यह बड़ी सुन्दरी थी, अतः एक धनिक शूद्र के साथ इसका विवाह हो गया। उस नगर का जो भूमिपति था उसकी इस पर दृष्टि लग गई। वह भूमिपति इसके पूर्व जन्म का पति ही था। जिससे इसका विवाह हुआ वह इसका देवर था। उस भूमिपति ने क्रोध में भरकर पूर्व, जन्म के वंश के सत्कार के कारण इसके पति को मार डाला और हम अपने घर में रख लिया। इसका चाल चलन भी अच्छा नहीं था, अतः इसे उपद्रव की बीमारी हो गई। इससे उसने इसे त्याग दिया। ये ससारी पुरुष तो रूप के लोभी होते हैं। इसे कोई पूछता नहीं था, इसी बीच में इसे कुष्ठ हो गया और पावों में बड़े-बड़े कीड़े पड़ गये। ये मव वे ही पशु पक्षी कीड़े हुए थे, जिन्हें मारकर उनके मांस को हमने खाया था। पहिले इसने उनके मांस को खाया था, अब ये इसके मांस को खा रहे हैं।

तुम्हारी इसके प्रति मानसिक आकर्षण भी थी, तुम्हारे साथ इसने दया भी की थी। इसीलिये इस जन्म में तुम्हारे मन में इसके प्रति दया उत्पन्न हो गई और तुम इसे गंगा किनारे ले गये। जिस बुद्धिमान ने इस पर दया की यह इसकी पूर्व जन्म की दाय थी। इसका इस पर बड़ा स्नेह था। ससार में कोई पटना सहसा नहीं होती, सबका पूर्व जन्म के सत्कारों से सम्बन्ध रहता है। अब यह गंगा किनारे रहे, गंगा रज धारी में लगावे, गंगाजल का पान करे, इसीसे इसकी सद्गति हो आयगी। उस स्त्री ने ऐसा ही किया, कुछ दिन में उसका रोग दूर हो गया और गंगा किनारे रहने से उस स्वर्ग की भी प्राप्ति हुई।

अब अपनी बहुत देवकी से कह रहा है— 'सो, वहिन कोई किसी को जान बूझकर नहीं मारता। पूर्व जन्मों का वंश लेने को ही ऐसा करता है। मेरा तुम्हारे इन बच्चों के साथ ऐसा

ही कोई सस्वार रहा होगा। ज्ञानों के लिये तो कर्म-बन्धन है ही नहीं। क्योंकि उसका कर्तृत्व का अभिमान नहीं है। उसकी बुद्धि कम करते हुए भी उन कर्मों में लिप्त नहीं होती। ऐसी दशा में वह चार सम्पूर्ण लोकों की हत्या कर डाले तो भी वह उनसे मुक्त हो रहता है। कर्म-बन्धनों में बंधना नहीं है किन्तु जब तक यह अभिमान है कि मैं मारता हूँ या मुझे कोई मारता है, तब तब स्वयं प्रकाश होने पर भी जीव देह की उत्पत्ति तथा नाश का अभिमान करने के कारण वह अज्ञान वश बाध्य-बाधक भाव को प्राप्त होता है। इसलिये भावी को प्रवृत्त समझकर तुम सोच मत करो। मुझने यह पाप भूल में हो गया।

देवकीजी बोली—“अब भैया जो कुछ होना था तो हो गया हम तुमसे कुछ कहते याड़े हो हे। तुम सर्व समर्थ हो जो चाहो कर सकते हो।”

कस बोला—“कहोगे क्या? तुम दोनों ता बड़े साधु स्वभाव के हो घमस्ति हो, सहिष्णु हो दीन दुखियों पर दया करने वाले हो। मैंने जो तुम्हारे साथ अन्याय, अयाचार किये हैं मृगशता की है उसे क्षमा करो। मैं तुम्हारी शरण हूँ।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियों! इतना कहकर कस सुश्रियाँ भरकर रोने लगा तथा देवकीजी और बसुदेवजी के पैरों में गिर पड़ा।”

इतने अभिमानों और पराक्रमा वस को इस प्रकार दीम होते देखकर देवी देवकी का क्रोध शान्त हो गया। बसुदेवजी तो जानी ही थे उन्हें तो क्रोध होना ही क्या था, अब वे वस को धर्म बंधाते हुए हंसकर बोले—“राजन्! आपने मत्स्य बात कही। वास्तव में कौन कितने सुख दुःख देता है सभी अपने किये कर्मों

ता फल भोग रहे हैं। देह धारियों को घसान के कारण ही अहं बुद्धि होंती है। उसी अज्ञान के प्रभाव में यह मेरा है, यह तेरा है, इस प्रकार ही अहं बुद्धि प्रयोग में आती है, वे भेद सभी लोग ही दुःख, दुर्ग, माय, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा मय से



झगड़े होकर परस्पर में लड़ते भगड़ते हैं और एक दूसरे का नाश करानेवाले बाल स्वरूप सबप्रकृति परमात्मा का नहीं जानते।''
स्वजी कहते हैं—'मुनियों! ऐसा कहकर देवकीजी तथा वसुदेवजी ने सच्चे हृदय से बिना छल कपट के कस की क्षमा

कर दिया। कंस ने भी योगमाया के कथन पर विश्वास दिखाते हुए वसुदेव और देवकी को वनगन मुक्त कर दिया। वे दोनों कारावास से मुक्त होकर अपने घर चले गये। कंस उनसे प्रार्थना लहर अपने घर चला गया।”

छप्पय

मुल दुल कुँ को देहि भाग्य ही सब करवावे ।
 देवार्चन वियोग देव ही लाइ मिलावे ॥
 अहं बुद्धि अज्ञान जग्य प्रारब्ध बनावे ।
 हर्ष, शोक, भय, लोभ, मोह आदिक उपजावे ॥
 ऐसे ज्ञान घषारिके, करि प्रसन्न दोनों लये ।
 काराग्रह ते मुक्त है, हरि चित धरि निज रह गये ॥



इस के आगे की कथा अगले खण्ड में पढ़िये ।

